उपसंहार

उन्नसवीं सदी के आरंभिक दौर में ही भारत में अंग्रेजी सभ्यता और संस्कृति पैर पसारने लगी थी। धीरे-धीरे इस सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से भारतीय सभ्यता, संस्कृति में परिवर्तन होने लगे। यूरोपीय 'रिनेसॉ' की तर्ज पर इसे 'नवजागरण' का नाम दिया गया। नवजागरण की इस धारा ने सभी क्षेत्रों पर प्रभाव डाला। साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। हिन्दी साहित्य में भी ऐसा दौर आया जब नई विधाएं, नई विचारधारा और नए दृष्टिकोण ने जन्म लिया। इन सब पर प्रभाव था राष्ट्रीय चेतना का, जिसने राष्ट्रवाद की बुनियाद डाली थी। अन्य प्रदेशों अथवा क्षेत्रों में जहाँ नवजागरण एक विशेष क्षेत्र में दिखाई पड़ता है, वहीं हिन्दी क्षेत्र में नवजागरण उसके साहित्य में दिखाई देता है। 1857 के विद्रोह के पश्चात नवजागरण में उत्कर्ष आता है। बंगाल, महाराष्ट्र, तमिलनाडु और हिन्दी प्रदेश में भी परिवर्तन के स्वर साहित्य के माध्यम से सुनाई पड़ते हैं। भारतीय नवजागरण की प्रकृति और अंतर्वस्तु में अंतर आया। हिन्दी नवजागरण की संकल्पना को स्थापित करने का श्रेय डॉ. रामविलास शर्मा को जाता है। उससे पहले भारतीय नवजागरण के सन्दर्भ में सिर्फ बंगला नवजागरण की चर्चा की जाती थी। भक्ति आंदोलन से लोकजागरण का आरंभ हो जाता है। राजनीतिक आंदोलन 1857 और उससे भी पहले आरंभ हो चुके थे। 19वीं सदी के नवजागरण का उदय राजनीतिक पराधीनता की छत्र-छाया में हुआ। उस समय की रचनाओं में राजभक्ति के साथ-साथ राष्ट्रभक्ति भी पाई जाती है। हिन्दी साहित्य में आधुनिकता की नींव डालने वाले भारतेन्दु और उसके साथियों ने नवजागरण की धारा को आगे बढ़ाया। राजनीतिक जागरण के साथ-साथ सामाजिक एवं सांस्कृतिक जागृति लाने का कार्य भी भारतेन्दु मंडल के रचनाकारों ने किया। साहित्य में एक नए युग का आरंभ होता है। इस नए युग की चेतना को बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र और बालमुकुंद गुप्त जैसे रचनाकारों के सृजन ने गति दी। इसी चेतना का विस्तारित रूप महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग के रचनाकारों

की रचनाओं में पाया जाता है। बालमुकुंद गुप्त का रचनाकार्य दोनों युग में विशेष महत्व का है। दोनों युगों में गुप्त जी ने कार्य किया और उनकी रचनाओं का आकलन एक नया द्वष्टिबोध देता है।

प्रथम अध्याय **'हिन्दी नवजागरण की अवधारणा'** के निष्कर्ष स्वरूप नवजागरण के अर्थ, व्युत्पत्ति और परिभाषा का सामंजस्य मिलता है। प्रायः नवजागरण की अवधारणा को यूरोपीय रिनेसां से उद्भूत माना जाता है, परंतु यदि भारतीय सन्दर्भ में यदि देखें तो इसकी अंतर्वस्तु यूरोपीय रिनेसां से भिन्न है। जहाँ यूरोप में यह एक सभ्यता का पुनर्जन्म था वहीं भारत में आदिकाल से चली आ रही परम्परा का विकास था। भारतीय नवजागरण का विकास विदेशी शासन के अन्तर्गत हुआ जबकि यूरोप में ऐसा कुछ भी नहीं था। भारतीय नवजागरण में एक जातीय संस्कृति का भाव दिखाई पड़ता है। नवजागरण का एक चरण लोकजागरण भी रहा है। भक्तिकाल को लोकजागरण डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है। सामान्य लोक से संबंधित होने के कारण इस जागरण में शूद्र, स्त्री, किसान, कारीगर और सभी धर्मों के लोग बड़े पैमाने पर भाग लेते है। विद्यापति, कबीर, तुलसीदास, सूरदास, रैदास आदि संतों ने जनभाषाओं में पदों की रचना की। भक्ति आंदोलन सम्पूर्ण भारत में व्याप्त था, इसीलिए इसे नवजागरण का मुख्य चरण माना गया था। यह सांस्कृतिक आंदोलन था। नवजागरण की धारा में कुछ कारकों की मुख्य भूमिका रही है जैसे :- अंग्रेजों का आगमन, ईसाई मिश्नरियों का आगमन, पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अनुवाद कार्य, सुधारवादी आंदोलन 1857 का विद्रोह, मुस्लिम नवजागरण आदि। 1857 के विद्रोह के पश्चात भारतीय नवजागरण ने दिशा परिवर्तित कर ली थी। 1857 से पहले भी कुछ विद्रोह हुए थे परन्तु उनका राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य नहीं बन पाया था।

हिन्दी नवजागरण को भी 1857 के परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। हिन्दी साहित्य में 1857 के विद्रोह के पश्चात साम्राज्यवादी विरोधी चेतना उभर कर आती है। आधुनिक गद्य के विकास के साथ-साथ राष्ट्रीयता की धारा का भी विकास होता है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी नवजागरण के चार चरण माने है। 1857 का विद्रोह, भारतेन्दु युग, द्विवेदी युग और निराला का लेखन और उसके बाद का साहित्य। 1857 की क्रान्ति का संबंध भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग से भी है। 1857 की क्रान्ति का संबंध भारतेन्दु युग और हिन्दी जाति से भी है क्योंकि डॉ. शर्मा ने तर्कों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि इस प्रदेश की क्रियाशीलता अन्य प्रदेशों से अधिक थी। इसलिए इस प्रदेश के साहित्य पर भी नवजागरण की छाप स्पष्ट दिखाई देती है।

दूसरा अध्याय **'हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु युग'** में हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु युग में संबंध दिखाया गया है। नवजागरण के प्रेरक तत्वों में प्रेस की भूमिका अति महत्त्वपूर्ण रही है। हिन्दी नवजागरण के विकास में भी प्रेस के साधनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। प्रेस के द्वारा ही हिन्दी भाषा का विकसित रूप हमारे सामने है। परन्तु आरंभ में हिन्दी तथा अन्य देशी भाषाओं के प्रचार-प्रसार के लिए बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ा। प्रेस की स्थापना से पत्रकारिता का विकास आरंभ हुआ। प्रेस स्थापित करने का प्रयास पुर्तगालियों की तरफ से किए गए। ईसाईयों ने भी अपने धार्मिक ग्रन्थ मुद्रित करने के लिए प्रेस की स्थापना की गई थी। परन्तु धीरे-धीरे अन्य विषयों की सामग्री भी प्रकाशित होने लगी। 1780 से हिके गजट नामक अंग्रेजी अखबार से आरंभ हुआ नवजागरण का पहिया हिन्दी और अन्य देशी भाषाओं की पत्रकारिता तक जा पहुँचता है। राष्ट्रीय नवजागरण के विराट अभियान में हिन्दी पत्रकारिता के संघर्ष की विशेष भूमिका रही है। राजाराम मोहनराय ने देशी भाषा की पत्रकारिता का श्रीगणेश किया, तो उंदत मार्तण्ड ने हिन्दी पत्रकारिता का पथ प्रकाशित किया। परन्तु नए शोधों के आए परिणाम से उंदत मार्तण्ड का प्रथम हिन्दी पत्र होना संशय में डालता है। 1826 से लेकर 1850 तक की पत्रकारिता की प्रगति मंद ही रही। इस काल की पत्रकारिता का मुख्य प्रयोजन अथवा विशिष्ट उद्देश्य नहीं था। परन्तु 1857 के विद्रोह के पश्चात हिन्दी और देशी भाषाओं की पत्रकारिता एक विशेष प्रयोजन को लेकर चल पड़ी थी। इस काल में पत्र-पत्रिकाओं की संख्या में

निरंतर वृद्धि होती चली गई। इन पत्रिकाओं ने आरंभ से ही राष्ट्रीय चेतना को अपनाया था। सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक विषयों पर इस काल की पत्रिकाओं ने जमकर लिखा। इसी काल में द्विभाषी पत्रों का भी दौर आरंभ हो गया था, परन्तु अंग्रेजी सरकार की भेदभाव नीति के कारण हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता में अलगाव उत्पन्न हो गया था। अंग्रेजी सरकार उर्दू को बढ़ावा दे रही थी। फलस्वरूप लोगों का झुकाव हिन्दी की तरफ बढ़ने लगा। हिन्दी पत्रकारिता के प्रसार-प्रचार के साथ-साथ ही नए पाठक वर्ग और हिन्दी समाज का निर्माण होने लगा था। इस काल के समर्पित लेखकों जो कि पत्रकार और पत्र संपादक भी थे विभिन्न कठिनाईयों का सामना करके भी हिन्दी को जीवित रखा। आर्थिक कठिनाईयां, प्रेस एक्ट का भय, अशिक्षित जनता, हिन्दी की तरफ से रूझान कम होना, अंग्रेजों की भेदभाव नीति के कारण उर्दू को बढ़ावा जैसे बाधाओं से भी हार न मान कर हिन्दी के संघर्ष किया। यह कार्य भारतेन्दु और उसके सहयोगियों ने किया। साहित्यिक विधाओं के नवीनीकरण के साथ विचारों का भी नवीनीकरण साहित्य के माध्यम से किया।

तीसरा अध्याय **'बालमुकुंद गुप्तः व्यक्तित्व और प्रतिरोध का स्वर'** है। इस अध्याय में बालमुकुंद गुप्त का जीवन परिचय कृत्तित्व और भारतमित्र के माध्यम से गुप्त जी द्वारा किए गए कार्यों का महत्त्व दिखाया गया है। उर्दू पत्रकारिता से अपना जीवन आरंभ करने वाले बालमुकुंद गुप्तः हिन्दी पत्रकारिता में अपनी पैठ बनाते हैं। अखबारे चुनार, कोहेनूर जैसे नामी पत्रों के संपादक रहे गुप्त जी हिन्दोस्थान, हिन्दी बंगवासी और भारतमित्र में संपादक कार्य करते थे। भारतमित्र के माध्यम से उन्होंने जो कार्य वह आज भी अपना विशेष महत्त्व रखता है। शिवशंभु के चिट्ठों के द्वारा जो राजनीतिक जागृति लाने का प्रयास किया वह अंग्रेजी सरकार की साम्राज्यवाद विरोधी चेतना पर प्रहार करने वाला था। गुप्त जी ने बहुत रचनाएं 'हिन्दी बंगवासी' और 'हिन्दोस्थान' में लिखी थी। ये रचनाएं भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितने की 'शिवशंभु के चिट्ठे'। साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के कारण ही 'गुप्तजी' को हिन्दोस्थान के

मालिक 'राजा रामपाल सिंह' ने पत्र के संपादक मंडल से बाहर कर दिया था। भारतमित्र में छपे 'शिवशंभु के चिट्ठे' युग की जातीय भावना को परिलक्षित करते हैं। लार्ज कर्जन को व्यंग्य बनाकर लिखे गए ये चिट्ठे गुप्त जी के स्वदेश प्रेम, स्वाभिमान, साम्राज्यवाद विरोधी चेतना, भारतीय समाज का स्वाभाविक चित्रण करने की प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। 'भारतमित्र' में लिखे गए साहित्य की विषय चाहे राजनीतिक हो, सामाजिक हो अथवा आर्थिक हो सभी में एक ही भाव के दर्शन होते हैं, वह था 'मानव कल्याण'। गुप्त जी की रचनाओं में चाहे वह कविता हो, निबंध हो, आलोचना हो या फिर जीवन चरित्र सभी में भारतीय मानस का दुख प्रतिबिंबित होता है। एक मुख्य कार्य भारतमित्र के माध्यम से गुप्तजी ने किया वह था हिन्दी भाषा और नागरी लिपि के समर्थन में लिखे तर्कपूर्ण लेख। अंग्रेजों की फूट डालो नीति के कारण उर्दू को बढ़ावा मिल रहा था परन्तु समर्पित और जुझारू हिन्दी लेखकों द्वारा चलाए गए आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप सन् 1900 में हिन्दी को कानूनी मान्यता मिल गई थी। उर्दू वालों को लगा जैसे उनके साथ अन्याय हो गया हो। ऐसे में गुप्तजी ने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं करते हुए भी बहुत से लेखों और निबंधों के द्वारा हिन्दी की जातीय भावना को अभिव्यक्ति दी।

गुप्त जी का रचनाकाल दो युगों का प्रतिनिधित्व करता है। जब गुप्त जी के लेखन का चरमोत्षर्क था, तब महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लिखना ही आरंभ किया था। गुप्त जी और द्विवेदी जी के मध्य हुआ 'अनस्थिरता विवाद' उन दिनों चर्चा में रहा। इस विवाद में बहुत से विद्वानों ने भाग लिया। कुछ द्विवेदी जी के समर्थक थे तो कुछ गुप्त जी के।

चतुर्थ अध्याय **'हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त का योगदान'** है। इस अध्याय में हिन्दी नवजागरण में बालमुकुंद गुप्त के साहित्य की भूमिका के महत्व को रेखांकित किया गया है। गुप्त जी की राष्ट्रीय चेतना बलवती थी। इसी कारण से उनके साहित्य में हमें स्वाधीनता की चेतना और अंग्रेजी राज का विरोध दोनों ही मिलते हैं।

शिवशंभु के चिट्ठे के साथ-साथ उनकी अन्य रचनाओं में भी जैसे निबंधों, लेखों और कविताओं के माध्यम से हमें उनकी साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के दर्शन हो जाते हैं। भारतमित्र में लिखे राजनीतिक लेखों के कारण ही गुप्त जी उस समय के शीर्ष पत्रकारों की श्रेणी में थे। बंग-भंग के विरोध में गुप्त जी ने बहुत सी रचनाएं लिखी। इसके साथ-साथ स्वदेशी आंदोलन को समर्थन देने के लिए सम्पूर्ण निष्ठा से प्रयास किया। तत्कालीन समय में जेल जाने वाले सेनानियों पर उन्होंने गर्व करते हुए जेल को कृष्ण मन्दिर के समान पावन माना था। प्रत्येक राष्ट्रविरोधी तत्व पर उन्होंने प्रहार किया। राजभक्तों का विरोध और राष्ट्रभक्तों को खुलेआम समर्थन देना उनकी प्रबल राष्ट्रीयता का प्रमाण रहा है। ये सभी कार्य उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से किया जो कि हिन्दी में लिखी हुई थी। हिन्दी साहित्य का नवजागरण का स्वरूप उसकी इसी बदलती विचारधारा से निर्धारित होता है। जो भारतेन्दु ने आधुनिक गद्य के साथ आरंभ की थी और आगे चलकर द्विवेदी युग में उसकी भाषिक संरचना में परिवर्तन आता है। गुप्त जी रचनाओं का प्राणतत्व तो भारतेन्दु युगीन है, परन्तु शरीर (भाषयी संरचना) द्विवेदी युगीन। गुप्त जी ने भाषा के शुद्ध और व्यवस्थित रूप की तरफ ध्यान देकर उसमें प्रवाह बनाए रखा। उनकी भाषा में व्यंग्य और हास्य का मिश्रण पाया जाता है। इनके व्यंग्य बेधने वाले होते थे। नागरी लिपि की हिमायत में तथा उसे सम्पूर्ण राष्ट्र की लिपि बनाने के लिए उन्होंने अथक प्रयास किए। भाषा संबंधी दोषों को दूर करने के लिए ही द्विवेदी से अनस्थिरता संबंधी विवाद में उलझ पड़े थे।

गुप्त जी की आलोचनाओं की चर्चा प्रायः कम ही की जाती है। भारतेन्दु युग के दो आलोचकों में बालकृष्ण भट्ट और प्रेमधन का ही नाम लिया जाता है। परन्तु शोध के अन्तर्गत आलोचना के क्षेत्र में गुप्त जी का नाम भी आया है। गुप्त जी की कुछ आलोचनाएं प्राप्त हो पाई है जिनका विवरण इस अध्याय में है। तारा, अश्रुमती, अधलिखा फूल, तुलसी सुधाकर आदि की गुप्त जी ने आलोचना की है। इनकी आलोचनाओं में बहुत सी कमियां रह गई है, परन्तु इन्होंने आलोचना तटस्थ भाव से

की थी। नए लेखकों को प्रोत्साहित करना और नकलचियों को फटकार लगाने में उन्होंने देर नहीं लगाई। महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ हुए विवाद में,शेष विवाद में भी ये आरंभ से अंत तक तटस्थ रहे। हिन्दी भाषा की आलोचना के मार्ग को प्रशस्त करने में जो कार्य उन्होंने किया वह तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए आलोचना का मार्ग प्रशस्त करने में बहुत ही उल्लेखनीय है।

पंचत अध्याय **'बालमुकुन्द गुप्त की कविताई और अन्य लेखन'** गुप्त जी की सम्पूर्ण रचनाओं का जो आज उपलब्ध है उनका मूल्यांकन करता है। गुप्तजी स्वयं अपनी रचनाओं को तुकबन्दियां कहा करते थे। इनकी कविताओं में सभी भाषाओं केशब्द पाए जाते थे। कविता का मूल भाव राष्ट्रीय है, परन्तु शब्दगत सौन्दर्य नहीं। कुछ प्रसिद्ध लोकगीतों जैसे टेसू और जोगीड़ा आदि में इन्होंने बहुत से पद लिखे है। इनकी कविताओं में मुख्यतः समाज की विषमता, गरीबी, शोषण, अकाल, पाश्चात्य सभ्यता पर कटाक्ष, गुरू-शिष्य परम्परा पर व्यंग्य आदि विषय मिलते हैं। धार्मिक भावना और देवी-देवताओं की स्तुतिपरक रचनाओं में भी भारत की दीन-हीन प्रजा का भावपूर्वक वर्णन किया है। कुछ रूपगत नवीन प्रयोग भी किए है, परन्तु विषयवस्तु में एक ही भाव वह थी 'राष्ट्रीयता'। कुछ हास्य एवं व्यंग्य की कविताओं की भी रचना की है। एक नवीन विषय जो इन्होंने अपनाया था वह था बाल-शिक्षा के साथ-साथ मनोरंजन। बच्चों के मनोरंजन के लिए इन्होंने बहुत सी कविताएं तो लिखी ही थी साथ-साथ उनकी शिक्षा के लिए 'खिलौना' और 'खेल-तमाशा' नामक पुस्तकें भी लिखी थी। ये पुस्तकें गुप्त जी की दूरदर्शिता की देन थी क्योंकि उस समय में बच्चों के लिए ऐसी पुस्तकें बनाना आसान कार्य नहीं था। कार्टून फिल्म और पुस्तकें उस युग से कई दशकों आगे थी। गुप्त जी की संपादित अनूदित रचनाओं में कई पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पाई। हिन्दी भाषा, उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास, रत्नावली नाटिका, हरिदास, साधु रामस्वरूप सीहा, सर्पाधात चिकित्सा आदि पुस्तकें अपना विशिष्ट महत्व रखती है। उर्दू-हिन्दी समाचार पत्रों का इतिहास आज भी अपना ऐतिहासिक महत्त्व

रखती है। इसके अतिरिक्त हिन्दी भाषा के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए बहुत से हिन्दी-उर्दू लेखकों और विदेशी चितंको के जीवन-चरित लिखे है। अकबर, टोडरमल, शाइस्ताखां जैसे बादशाओं का चरित्र चित्रण भी इनके निष्पक्ष राजनीतिक चेतना को दर्शाता है।